P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-6* February (Part2) * 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

स्वातंत्र्योत्तर भारत में पंचायती राज व्यवस्था : उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ

राम चंद्र सिंह
सहायक आचार्य,
राजनीति विज्ञान विभाग,
शहीद मंगल पाण्डे राजकीय
महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,
मेरठ, उ0प्र0, भारत

सारांश

दुनिया के इस विशालतम लोकतंत्र[1] में स्वातंत्र्योत्तर काल में अथवा उसके पूर्व भारतीय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के लक्ष्यों, उद्देश्यों, प्रक्रियाओं, मूल्यों एवं कार्यपद्धतियों से विरासत में मिली लोकतांत्रिक संस्थाओं, प्रक्रियाओं एवं मूल्यों के विषय में निश्चयात्मक ढंग से कुछ भी कह पाना अतिशय कठिन है और इनके विषय में भविष्यकथन तो निश्चय ही असंभव सा प्रतीत होता है। ऐसा इसलिये भी है क्योंकि भारत जैसे विविधतायुक्त समाज में इतने लम्बे समय के औपनिवेशिक शासन की समाप्ति के पश्चात् लोकतांत्रिक संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं के पनपने एवं उनके विकास की दिशा का निरूपण पश्चिमी समाज वैज्ञानिकों द्वारा स्थापित प्रतिमानों के आधार पर नहीं किया जा सकता था। पश्चिमी जगत के मूर्धन्य राजनीति वैज्ञानिक रॉबर्ट ए0 डहल ने लिखा था कि–''हिन्दुस्तान की स्थिति को देखते हुए यह कहना बिल्कुल असंभव लगता है कि यह देश लोकतांत्रिक संस्थाओं को आगे बढ़ा पायेगा। यहाँ किसी तरह की अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं हैं।[2] एक दूसरे अमेरिकी विद्वान ने लिखा कि यूँ तो भारत समाज विज्ञान से संबंधित अवधारणाओं को तोड़ने के लिये मशहूर रहा है लेकिन इस लेख के तथ्य इस शक की ओर इशारा करते हैं कि भारत में लोकतंत्र संभव हो पायेगा या नहीं।[3] समकालीन भारतीय इतिहासकार रामचन्द्र गुहा ने लिखा है कि–हिन्दुस्तान की आजादी के साठ सालों के दौरान यह सवाल बार–बार उठाया जाता रहा है कि यह मुल्क कितने दिनों तक एक रह पायेगा या यहाँ लोकतंत्र की प्रक्रिया या संस्थाएँ कितने दिनों तक काम कर पायेंगी। हरेक प्रधानमंत्री की मृत्यु के बाद ये आशंका जताई जाती रही कि अब लोकतांत्रिक शासन की जगह सैनिक शासन ले लेगा। विनाश के इन भविष्यवेत्ताओं में से कई सारे पश्चिमी लेखक थे। जो सन् 1947 ई0 के बाद से भारत के विघटन की भविष्यवाणी करते आ रहे थे। उनमें से कई स्वाभाविक रूप से अमेरिकी या ब्रिटिश लेखक थे।[4]

मुख्य शब्द : लोकतांत्रिक, स्वातंत्र्योत्तर, निश्चयात्मक, अवधारणा, संस्थानीकरण, प्रतिनिधि संस्थाऐं, राष्ट्रीय आन्दोलन।

प्रस्तावना

इसी अनिश्चित्ता एवं कशमकश के वातावरण में भी भारतीय संविधान के शिल्पकारों ने भारतीय जनमानस की राजनीतिक समझ के ऊपर पर्याप्त भरोसा करते हुए अधिकांश पश्चिमी देशों के उलट एक ही बार में सार्वभौम व्यस्क मताधिकार को स्वीकार कर लोकतांत्रिक व्यवस्था में अपनी आस्था का इजहार किया था। गौरतलब है कि स्वतंत्र्योत्तर भारत में लोकतंत्र का संस्थानीकरण अचानक आये हुए किसी वैचारिक बदलाव का परिणाम नहीं है, अपितु भारत में लोकतांत्रिक संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं के विकास को राष्ट्रीय आंदोलन की विरासत के रूप में ही देखकर उनकी सही व्याख्या की जा सकती है। रजनी कोठारी ने लिखा है कि एशिया और अफ्रीका के नये स्वतंत्र देशों को अपना संविधान बनाने और उसे अमली रूप देने में बहुत कठिनाई हुई है। भारत में ऐसी कोई कठिनाई नहीं हुई न सिर्फ यहाँ तेजी से विस्तृत संविधान बना लिया गया बल्कि उसके आधार पर लोकतांत्रिक संस्थाओं का लंबा–चौड़ा ढांचा भी खड़ा कर दिया गया जो अब तक काम कर रहा है। इसका कारण यह है कि मूल बातों पर स्वतंत्रता के पहले की पीढ़ी एकमत थी और स्वतंत्रता के बाद की पीढ़ी में भी इन्हीं विचारों को मान्यता मिली। हम देख चुके हैं कि राष्ट्रीय आंदोलन के लंबे क्रम में किस प्रकार सिद्धांतों और उद्देश्यों पर खुलकर विचार हुआ और उन्हें कांग्रेस के प्रस्तावों में ठोस रूप दिया गया।[5] भारतीय संविधान सभा में भी बहस के दौरान इस बात पर जोर दिया गया कि लोकतांत्रिक संस्थाओं को विदेशी या बाहर की चीज नहीं समझना चाहिये, क्योंकि प्रायः एक पीढ़ी से देश में प्रतिनिधि संस्थाएँ

काम कर रही हैं और जब कभी राष्ट्रीय नेता कहते थे कि इन संस्थाओं के अधिकार बढ़ाये जाँए तब अंग्रेज सरकार इसका विरोध करती थी। कांग्रेस लगातार व्यस्क मताधिकार और संसदीय शासनतंत्र की माँग करती आई थी।[6]

उक्त कथ्य राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन एवं स्वतंत्रताकालीन भारतीय राजनीतिक नेतृत्व की लोकतांत्रिक संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं में आस्था को अभिव्यक्त एवं स्पष्ट करता है।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का विचार भी राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान प्रमुखता लिये हुए था मसलन गांधी युग में तो यह और भी अधिक अविभावी हो गया था। लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन के समय जहाँ महात्मा गांधी ग्रामीण स्वतंत्रता तथा स्थानीय स्वशासन की वकालत कर रहे थे, वहाँ आंदोलन के अन्य प्रमुख नेता पश्चिमी विचारों से प्रभावित थे।[7] महात्मा गांधी ने अपनी ग्राम स्वराज की कल्पना में कहा कि वह एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहंम जरूरतों के लिये अपने पड़ोसी पर निर्भर नहीं रहेगा और फिर भी बहुतेरी जरूरतों के लिये, जिनमें दूसरो का सहयोग अनिवार्य होगा, वह परस्पर सहयोग से काम लेगा।[8] प्रो0 ज्योति प्रसाद सूद ने महात्मा गांधी के राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की व्याख्या करते हुए लिखा कि–राजनीतिक विकेन्द्रीकरण का अर्थ यह है कि ग्रामों को अपना प्रबंध स्वयं करने का अधिकतम अधिकार दिया जाना चाहिये; राष्ट्रीय अथवा संघीय सरकार का उस पर नियंत्रण न्यूनतम होना चाहिये। यदि इसको पूर्ण रूप से नैतिक बनाया जा सके और उसके बाध्यकारी स्वरूप को सर्वथा नष्ट किया जा सके तब वह एक आदर्श स्थिति होगी।[9]

भारतीय संविधान के भाग चार अनुच्छेद–40 में नीति–निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत कहा गया है कि राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिये कदम उठायेगा और उनको ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाईयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिये आवश्यक हो।[10]

आजादी के बाद से ही लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के प्रयास शुरू कर दिये गये। संविधान में पंचायती राज व्यवस्था को नीति निदेशक तत्वों के अध्याय में (जो बाध्यकारी प्रभाव नहीं रखते) शायद इसलिये रखा गया क्योंकि संविधान के मुख्य शिल्पकार डॉ0 भीमराव अम्बेडकर गांवों को शासन की मुख्य इकाई बनाने के पक्ष में नही थे। डॉ0 अम्बेडकर ने संविधान सभा में पंचायतों की बड़ी तीखी आलोचना की। उनके विचार से पंचायतें भ्रष्टाचार, संकीर्णता, दकियानूसीपन और पिछड़ेपन की प्रतीक रही हैं और आधुनिक सा संविधानिक शासन में उनका कोई स्थान नहीं होना चाहिये।[11] विभाजन के पश्चात जन्मी परिस्थितियों को देखकर संविधान सभा के अधिकांश सदस्य भी एक सशक्त केन्द्र के पक्ष में ही थे।

विकास प्रशासन में जनसामान्य को सहभागी बनाने के लिये 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम शुरू किये गये लेकिन 1957 में योजना आयोग ने बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में जिस कमेटी का गठन किया, उसने उक्त कार्यक्रमों की समीक्षा प्रस्तुत करते हुए अपनी रिपोर्ट में कहा कि ग्रामीण जनता में जागरूकता के अभाव एवं प्रशासन के असहभागी रवैये के चलते ये कार्यक्रम बुरी तरह असफल हो गये थे। इस विफलता का एक कारण यह था कि इसे सरकारी महकमें की तरह चलाया गया और गांवों के विकास के बजाय सामुदायिक विकास की मशीनरी के विस्तार पर ही ज्यादा जोर दिया गया। सरकारी तंत्र के जरिये गांवों के लोगों की मनोवृत्ति को बदलने की आशा की गयी, नतीजा यह हुआ कि गांवों की उन्नति के लिये खुद प्रयत्न करने के बजाय ग्रामीण जनता सरकार का मुँह जोहती रही।[12]

बलवंत राय मेहता समिति ने देश में त्रि–स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की सिफारिश की जिसमें ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद।[13] इस समिति द्वारा सिफारिशोपरांत सबसे पहले 02 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले से तत्कालीन प्रधानमंत्री पं0 पवाहर लाल नेहरू ने पंचायती राज व्यवस्था का शुभारंभ किया। इसके पश्चात् भारत में पंचायती राज व्यवस्था के संस्थानीकरण के प्रयासों में तेजी आ गयी। 1977 में विख्यात समाजवादी अशोक मंहता समिति जी0वी0के0 राव समिति (1985), एल0एम0 सिंघवी समिति (1987), पी0के0 थुंगन समिति (1988) में पंचायती राज व्यवस्था की संरचना एक कार्यकरण संबंधी अन्यान्य सुझाव दिये। अन्ततः 73वां संविधान संशोधन अधिनियम 1992 (जो 24 अप्रैल, 1993 को लागू हुआ) के द्वारा भारतीय संविधान के भाग–9 में अनुच्छेद 243–243ण (16 अनुच्छेद) के अन्तर्गत पंचायती राज व्यवस्था को संविधानिक दर्जा दे दिया गया।[14] पंचायती राज व्यवस्था का सांस्थानिक ढाँचा उक्त अनुच्छेदों में वर्णित है। चूंकि शोध पत्र स्वरूपणात्मक पद्धति को वरीयता नहीं देता है, इसलिये कानूनी–औपचारिक ढांचे के लिये संविधानिक उपबंधों का उल्लेख अनावश्यक प्रतीत होता है।

पंचायती राज व्यवस्था की उपलब्धियों का विश्लेषण

पंचायती राज व्यवस्था भारतीय समाज की सामाजिक–आर्थिक संरचना में परिवर्तन लाने में सहयोग प्रदान कर रही है। अब लोग न केवल विकास कार्यों में भाग लेने लगे हैं बल्कि विकास कार्यों के क्रियान्वयन में आयी विफलता को भी सामने लाते हुए आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाने लगे हैं। पंचायती राज संस्थाओं ने ग्रामीण उत्तरदायित्व की भावना को जाग्रत करने में योगदान दिया है। केन्द्र सरकार द्वारा बनायी गयी योजनाओं को स्थानीय स्तर पर लागू करने तथा उससे अपेक्षित परिणाम दिखाने में पंचायते महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। पंचायती राज व्यवस्था के तहत महिला नेतृत्व उभरकर आ रहा है, जिससे भारतीय राजनीतिक संस्कृति के लोकतांत्रिकरण एवं सहभागीकरण में खासी मदद् मिल रही है। पिछड़े वर्गों मसलन अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों में राजनीतिक चेतना का संचार हुआ है, जिससे राजनीतिक व्यवस्था के प्रति उनकी अभिवृत्ति सहभागिता उन्मुख हुई है। 27 अप्रैल 2001 को प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने आंध्र–प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री चंद्रबाबू नायडू को लिखा–''आपको याद

होगा कि संविधान के भाग–IX के रूप में पंचायतीराज संस्थाओं संविधान (73वां संशोधन) अधिनियम 1992 के पारित होने के साथ पंचायतीराज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। संघीय राजनीति में पंचायतों को शासन के तीसरे स्तर के रूप में देखा गया है।[15] आज स्थानीय संस्थाओं के चुनाव में हर पांच साल में चुनाव एक मानक बन गये हैं, हालांकि प्रारंभिक वर्षों में लगभग सभी राज्यों ने सत्ता में होने के बावजूद संविधान के प्रावधानों को खारिज करने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी। राज्य निर्वाचन आयोग जैसे संवैधानिक निकायों ने पंचायत चुनावों को गंभीर रूप से लेते हुए जमीनी स्तर की लोकतांत्रिक प्रक्रिया को काफी विश्वसनीयता प्रदान की है।

सवाल जहाँ निर्णय लेने की प्रक्रिया में हमारी आबादी के प्रथक वर्गों का है, हमने लगातार प्रगति देखी है। महिलाओं ने बड़े पैमाने पर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया है। 2015 में 13,41,773 महिलाँ स्थानीय सरकारों के लिये चुनी गयी और इस संख्या की तीन गुना महिलाओं ने चुनाव लड़ा। विशेष रूप से अनुसूचित जाति एवं अनुसूचिज जनजाति की महिलाओं ने अपना उचित हिस्सा सुरक्षित कर लिया है।[16] रामचन्द्र गुहा ने लिखा है कि इन बातों के बावजूद संविधान के 73वें संशोधन ने एक ऐसी प्रक्रिया की शुरूआत की है जो संभवतः भारतीय लोकतंत्र पर

एक निश्चित प्रभाव डालेगी। इस कानून के बन जाने के बाद पूरे देश की पंचायतों में तीस लाख से भी ज्यादा चुने हुए प्रतिनिधि थे, जिसमें से एक–तिहाई महिलाएँ थीं। वे लोग एक भारी चुनावी प्रतिस्पर्धा के बाद चुने गये और पंचायतों के चुनाव में आम तौर पर 70 फसीदी से ज्यादा लोगों ने मतदान में हिस्सा लिया।[17]

आगे आप लिखते हैं कि एक दिलचस्प और शायद उससे भी महत्वपूर्ण बात है कि पंचायती चुनावें का जातियों के बीच संबंधों पर पड़ने वाला असर। उत्तर प्रदेश में जहाँ दलित समुदाय के लोग ज्यादा जागरूक और संगठित हैं, वहाँ दबंग जातियों को उनके साथ स्थानीय स्तर पर सत्ता की साझेदारी करनी पड़ती है।[18] पंचायत निकायों को आवंटित अनुदान में निरंतर वृद्धि हुई है।

विभिन्न वित्त आयोगों द्वारा स्थानीय निकायों को आबंटित अनुदान[19]

वित्त आयोग	पंचायतों को अनुदान (करोड़ रूपये)	शहरी स्थानीय निकायों को अनुदान (करोड़ रूपये)
दसवां	4380.93	1000.00
ग्यारहवां	8000.00	2000.00
बारहवां	20000.00	23111.00
चौदहवां	200292.00	87143.8

इस व्यवस्था ने भारतीय लोकतांत्रिक तंत्र में दो मौलिक परिवर्तन हुए हैं–

1. भारतीय राजनीति का लोकतांत्रिक आधार बढ़ गया है। उदाहरण के लिये इस समय देश भर में लगभग 248620 ग्राम पंचायतें, 6425 ब्लॉक पंचायतें और 601 जिला पंचायते काम कर रही हैं। सभी राज्यों में पंचायतों के तीन स्तर वाले ढाँचे के तहत लगभग 30 लाख प्रतिनिधियों को 05 वर्ष के लिये चुना जाता है जिसमें से 12 लाख से अधिक प्रतिनिधि महिलाएँ होती हैं।

क्र0सं0	राज्य	पंचायतों की संख्या[20]
1.	आंध्र प्रदेश	22945
2.	असम	2431
3.	बिहार	9040
4.	छत्तीसगढ़	9982
5.	हिमाचल प्रदेश	3330
6.	झारखंड	3979
7.	कर्नाटक	5833
8.	केरल	1165
9.	मध्य प्रदेश	23412
10.	महाराष्ट्र	28277
11.	औड़िशा	6578
12.	राजस्थान	9457
13.	त्रिपुरा	540
14.	उत्तराखंड	7335
15.	प0 बंगाल	3713

अनुसूचित जातियों–जनजातियों और पिछड़ी जातियों से भी लगभग 10 लाख प्रतिनिधि चुने जाते हैं।[21]

2. इससे भारत में संघवाद में महत्वपूर्ण बदलाव आये हैं और जिलो और निचले स्तर पर लोकतांत्रिक ढंग से निर्वाचित स्थानीय सरकारों के साथ यह बहुस्तरीय संघ बन गया है।

पंचायती राज व्यवस्था के समक्ष निम्नलिखित चुनौतियाँ विद्यमान हैं

1. अशिक्षा एवं अज्ञानता।
2. संकीर्ण तथा निजी स्वार्थ।
3. सरकारों का भारी हस्तक्षेप।
4. प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव।
5. वित्तीय साधनों की कमीं।
6. राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप।
7. भ्रष्टाचार।
8. पितृसत्ता।
9. सामंती मानसिकता।
10. असमान विकास।
11. प्रशासन का नौकरशाही रवैय्या आदि।

निष्कर्ष

निष्कर्षस्वरूप यही कहा जा सकता है कि–भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के इतिहास में पंचायती राज व्यवस्था एक स्वर्णिम अध्याय है जिससे भारत में लोकतांत्रिकरण एवं सत्ता के विकेन्द्रीकरण की उस प्रक्रिया को गति दी है जिसे भारतीय संविधान के द्वारा शुरू किया गया था।

अंतः टिप्पणी

1. गुहा, रामचन्द्र, 'भारत : गाँधी के बाद', दुनिया के विशालतम लोकतंत्र का इतिहास, पेंगुइन रेंडम हाउस, इण्डिया, 2011, मुख्य पृष्ठ।

2. *वही, पृ0सं0–XV (प्रस्तावना)*
3. *वही*
4. *वही*
5. *कोठारी, रजनी, 'भारत में राजनीति, दूसरा संस्करण, ओरियंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद, भारत, 2016, पृ0सं0–75*
6. *वही, पृ0सं0–76*
7. *नारंग, ए0एस0, 'भारतीय शासन एवं राजनीति', गीतांजली पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2013, पृ0सं0–196*
8. *कुरूक्षेत्र, संपादकीय, जुलाई 2018*
9. *सूद, ज्योति प्रसाद, 'भारतीय राजनीतिक विचारक', के0 नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ (उ0प्र0), पृ0सं0–51*
10. *उपाध्याय, जय जय राम, 'भारत का संविधान – बेयर एक्ट', सेन्ट्रल ला एजेंसी, इलाहाबाद (उ0प्र0), 2015, पृ0सं0–22*
11. *कश्यप, सुभाष, 'हमारा संविधान, एन0बी0टी0, भारत, 2015, पृ0सं0–312*
12. *कोठारी, रजनी, 'भारत में राजनीति, दूसरा संस्करण, ओरियंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद, भारत, 2016 पृ0सं0–93*
13. *कुरूक्षेत्र, संपादीय, जुलाई 2018*
14. *उपाध्याय, जय जय राम, 'भारत का संविधान – बेयर एक्ट', सेन्ट्रल ला एजेंसी, इलाहाबाद (उ0प्र0), पृ0सं0 120–128*
15. *कुरूक्षेत्र, जॉर्ज मैथ्यू का लेख, पृ0सं0–05*
16. *वही, पृ0सं0–06*
17. *गुहा, राम चंद्र, 'भारत : नेहरू के बाद', दुनिया के विशालतम लोकतंत्र का इतिहास, पेंगुइन रेंडम हाउस इण्डिया, 2012, मुख्य पृष्ठ। पृ0सं0–351*
18. *वही*
19. *कुरूक्षेत्र, मनोज राय का लेख, पृ0सं0–15*
20. *कुरूक्षेत्र, डॉ0 योगेश कुमार, श्रद्धा कुमार एवं मोनिका बोस्को का लेख, पृ0सं0–09*
21. *कुरूक्षेत्र, डॉ0 कृष्ण चंद्र चौधरी का लेख, पृ0सं0–38*